मेघदूत का साहित्य पक्ष

म० म० प्रो० रेवा प्रसाद द्विवेदी

महाकवि कालिदास ने मेघदूत की कथा मन्दाक्रान्ता छन्द के कलात्मक और सफल निर्वाह के साथ प्रस्तुति की है। यह कथा छन्दोबद्ध भाषा में लिखी गई इतने मात्र से इस रचना में सामान्य रचना की अपेक्षा उत्कृष्टता आ गई। ठीक ही है, क्योंकि काव्य में संगीत कला जुड़ गई पद्य के रूप में। संगीत के सांचे में बिठाए शब्द, जो ललित भी हैं और मधुर भी। शब्दों से बने वाक्य जो मुहावरेदार हैं और सुभाषितबहुल। वाक्यों से प्रकट हुए भाव जिनमें व्यथा और प्रीति का ज्वार है। मानवीय जीवन का परिवेष (पर्यावरण) इसके साथ है। चराचर में दिखाई दे रहा है। स्नेह और माधुर्य से स्निग्ध ललितमधुर प्रेम। नदी नदी नहीं, मेघ की विरहिणी प्रेयसी है। उसकी कृशता की औषधि एक ही है "प्रिय मेघ का समागम।" प्रीति उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी दिव्य सत्ता। उसके प्रति श्रद्धा आवश्यक है। यदि कुछ टेढ़े भी चलना पड़े तो धामदर्शन का लाभ नहीं छोड़ना चाहिए।

वस्तु विन्यास ऐसा कि जिससे बहुरंगी चित्र उभरते आते हैं। यक्ष की वाणी में सोपानमार्ग हीरा मरकत शिला का है। उसमें खिले हुए हैं सुनहले कमल। कमल की रंग है प्रवाल के रंग की। उसमें भरा जल है स्फटिक सा स्वच्छ। एक दूसरा चित्र वासयष्टि का है। वासयष्टि स्वयं है सोने की, जिस चबूतरे पर वह खड़ी है वह है बना स्फटिक का और जिन पत्थरों से वह बंधी है वे हैं प्रौढ़ बांस से हरे । क्रीड़ाशैल भी ऐसा ही है। उसके शिखर निर्मित हैं इन्द्रनील मणि से और उसके चारों ओर घेरा है सुवर्ण कदली का। वह वैसा ही दिखाई दे रहा है जैसा दिखाई देता है स्वयं कृष्णवर्ण का मेघ जिसके चारों ओर कौंध रही हो बिजली।

भावचित्र भी हृदयस्पर्शी हैं :-

1. यक्षी के शयन कक्ष में प्रविष्ट हैं चन्द्ररश्मियां। विरह के पहले वे अमृत सी शीतल थीं, अत: प्रीतिकर थी। आज विरह की विषम घड़ी में वे शयनकक्ष में आई हुई हैं। यक्षी उनका स्वागत तो करती है उन्हें निहार कर, किन्तु आंखें तुरन्त लौटा लेती है। अब वे डबडबाई हैं। पक्ष्म भी अश्रुजल से भारी हैं। अत: वे भांप पाते नहीं, फलत: आंखें अधखुली रह जाती हैं। वे ऐसी लगती हैं जैसी मेघाच्छन्न दिन में स्थलकमलिनी लग सकती है अधखिली।

2. विरही यक्ष जो अपने ऊपर बीतती है उसी स्थिति की कल्पना यक्षी में भी करता है। वह दुबला गया है तो सोचता है उसकी प्रिया यक्षी भी दुबला गई होगी, उसे ज्वर का ताप अनुभूत होता है तो वह कल्पना करता है कि उसकी यक्षी को भी ज्वर चढ़ा होगा, यक्ष की आंखें डबडबाई रहती हैं तो वह सोचता है कि यक्षी की आंखों से आंसू झर रहे होंगे और स्वयं के भीतर हूक का अनुभव कर यक्ष सोचता है "उसकी प्रिया में भी हूक का ज्वार उठा होगा। लम्बी लम्बी सांसे लेता यक्ष यक्षी में इन्हीं लम्बी सांसों की कल्पना करता है। विधाता वाम है। उसने यक्ष का मार्ग रोक रखा है। इसलिए कल्पनाओं से वह प्रिया की विभिन्न स्थितियों का भोग करता है।

3. यक्ष ने प्रणयकुपित यक्षी का चित्र धातुरंगों से शिला पर बना लिया। अब वह बनाना चाहता है अपना चित्र यक्षी के चरणों पर पतित मुद्रा में। किन्तु विधाता को दोनों के चित्रों का मिलन भी मान्य नहीं। वह क्रूर है। आंखों में आंसू भर जाते हैं और चित्र अधूरा ही छूट जाता है।

4. कभी कभी यक्षी स्वप्न में दिखाई दे जाती है तो वह उसके आश्लेष के लिए भुजाएं आसमान में फैला देता है। इस स्थिति को देखती हैं वनदेवियां तो उनके मोती जैसे स्थूल अश्रुलेश वृक्षों की कोपलों पर आ गिरते हैं।

5. देवदारु द्रुमों के किसलयपुटों को अलग अलग कर उसके रस की सुगन्ध से सुरक्षित पवन के जो झोंके दक्षिण की ओर चल पड़ते हैं यक्ष उनका आलिंगन करता दिखाई देता है यह सोच कि कदाचित् वे यक्षी का स्पर्श करके आए होंगे ।

यह सब हुआ धनपति के कोध से उत्पन्न विश्लेष के कारण जैसा कि स्वयं यक्ष ने कहा है "संदेशं मे हर धनपतिकोध विश्लेषितस्य"। क्रोध का कारण क्या कहा जाता है "यक्ष को सौंपा गया था पूजा के लिए प्रात:काल खिले कमलपुष्प लाने का कार्य। एक दिन एक कमल पुष्प खिला और उसमें भौंरा गूंज गूंज कर कह गया यक्ष की चोरी। यक्ष रात को ही चुन लाया करता था कमल पुष्प कली के ही रूप में, जब कि आदेश था प्रात:काल खिले पुष्प लाने का। यक्षपति ने कारण समझ लिया। कारण था प्रिया के साथ दिवारति, जो निषिद्ध थी। धनपति ने शाप दिया "जा तू अपनी प्रिया से वियुक्त हो जा"। किन्तु यक्षराज का हृदय एकदम निष्ठुर नहीं था। उन्होंने शाप की अवधि निश्चित की एक वर्ष की। शाप अप्रतिहार्य था। यक्ष को प्रिया से अलग होना ही पड़ा। दम्पती के एकान्त जीवन में भी शिक्षा अपेक्षित है संयम की। भगवान् राम और सीता के जीवन से यह शिक्षा सुलभ थी, अत: यक्ष ने रामगिरि को ही चुना। वहीं था जानकी कुण्ड। शाप मिला था प्रबोधिनी को अत: एक वर्ष की अवधि प्रबोधिनी की पूर्व सन्ध्या में समाप्त होने वाली थी। उसमें चार महीने शेष थे, अत: निश्चित ही यक्ष को मेघ के दर्शन हरिशयनी तिथि को हुए। उस दिन भगवान् को सुलाते समय जो मन्त्र बोला जाता है उसमें मेघ दर्शन की ही बात कही जाती है भगवान्! आकाश में मेघ आ गए हैं, अब आप शयन कीजिए।" यही तिथि थी आषाढ़ मास की प्रमुख तिथि। कालिदास प्रमुख अर्थ में प्रथम शब्द का प्रयोग करने के अभ्यासी हैं। जब उन्होंने कहा कि "आषाढ़ के प्रथम दिन पहाड़ की चोटी का आलिंगन किए दिखाई दिया मेघ" तो प्रथम शब्द प्रमुख अर्थ में बोल गये। वह तिथि हरिशयनपर्व की तिथि थी जिसमें मेघदर्शन का विधान है। उसी के कुछ बाद श्रावण का और कठिन महीना आने वाला था, जो वियोगवह्नि में झंझा बनता।

शाप का कारण "दिवारति"। इसलिए कि संदेश में यक्ष ने कहा हम अपनी मिलन की सभी इच्छाएं रात में पूरी करेंगे। अर्थ यह है कि दिन में नहीं, नहीं तो पुन: शाप मिलेगा और हमें ऐसा ही परिताप भोगना पड़ेगा। रघुवंश का विलासी अग्निवर्ण दिवाकाल में ही सेवकों की स्त्रियों के साथ रतिकर्म करता था और मालविका से अग्निमित्र दिन में ही मिलने गया था, तभी तो उपालम्भ में कहा गया था "अवि णिव्विग्धमणोरहो दिवासंकेदो मिहुणस्स" = इस जोड़ी का दिन में ही मिल लेने का मनोरथ निर्विघ्न तो रहा। कितनी गहरी है यह चोट। इसमें दिवा संकेत भी स्पष्ट है ही। यक्ष जाति दिव्ययोनि की जाति है इसलिए उसमें ये सब चपलताएं क्षम्य हैं, किन्तु यह यक्ष जब मनुष्य की आंखों में आ बैठता है तब उसकी रक्षा के लिए प्रतिबन्ध अपरिहार्य हो जाते हैं, और काव्य मनुष्य के लिए ही बनता है।

अभिनवगुप्त आदि सूक्ष्म समीक्षा के महाधनी सहृदयों ने मेघदूत को रसनिधान कहा। इसकी अधिक लोकप्रियता रस का ही फल है, किन्तु मेघदूत का रस जिस उक्ति से प्रकट होता है वह एकमात्र स्वगत उक्ति है। उसे वक्ता ही सुन सकता है। दूसरे शब्दों में मेघदूत का विश्व एकान्त का विश्व है, अत: इसमें सब कुछ कहा है और कहा भी गया है "ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थ:" अतएव शिशुपालवध में माघ इसी उक्ति को पुन: प्रस्तुति देते हैं :

आनाभे: सरसि नतभ्रवावगाढे चापल्यादथ पयसस्तरङ्गहस्तै: ।
उच्छायिस्तनयुगमध्यरोहिलब्धस्पर्शानांभवतिकुतोऽथवाव्यवस्था । । शिशुपाल**8.22.**

मेघदूत में जिस कथ्य के लिए ज्ञातास्वाद शब्द अपनाया गया उसी के लिए माघ में अपनाया गया "लब्धस्पर्श" शब्द। वक्तव्य एक, भेद केवल शब्द में। इसी को परिभाषित किया जाता है "वस्तुप्रतिवस्तुभाव" परिभाषा से।

पूरे मेघदूत में **111** ही नहीं, कुछ और भी पद्य हैं जिनसे संख्या लगभग **126** हो जाती है। इनमें से **12** पद्य हमने केवल टिप्पणी में दिए हैं और **3** पद्य मूल में संख्या हटा कर रख दिए हैं। अन्तिम पद्य का चतुर्थ चरण है "मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग:"। कुछ संस्करणों में इसके आगे भी कुछ पद्य हैं जिनमें मेघ अलका से लौटकर यक्ष को उसकी प्रिया का संदेश भी सुनाता है। विद्वज्जनानुरंजनी में सरस्वती तीर्थ और कल्याणमल्ल ने नेमिदूत तथा शीलदूत के ही अनुसार यह भी पद्य जोड़ा है

श्रुत्वा वार्त्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्य:
शापस्यान्तं सदयहृदय: संविधायास्तकोप:।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत्। । मेघ. **II.62**

अर्थात्अलका में जब मेघ यक्षी को यक्ष का संदेश सुना रहा था तब वहाँ शापदाता यक्षराज भी छिपे सुन रहे थे। उनमें दया फूट पड़ी, उनका कोप शान्त हो गया और उन्होंने उसी क्षण शाप लौटा लिया। दोनों दम्पती साढ़े तीन माह पहले ही मिला दिए गये। उनकी पीड़ा समाप्त हुई और चित्त हो उठे प्रहृष्ट। उन्हें अभीष्ट भोगों को भोगने का सुखभरा अवसर दिया गया सदा सर्वदा के लिए। इस पुनर्मिलन के पद्य में जिस पदावली का प्रयोग है वह अटपटी है। इसे कुबेर के द्वारा सुना गया यह भी अनुचित हुआ। अर्थयोजना भी उलटी है। पहले होगी कोपशान्ति तब होगा शाप का अन्त। दम्पती के लिए "विगलितशुचौ" और हृष्टचित्तौ ये जो दो विशेषण दिये गये ये भी लगभग निरर्थक हैं, किन्तु हैं सह्य। इनके आगे जो यह कहा गया है कि "उन्हें मनचाहे भोग भुगाए गये" यह सर्वथा अनुपयुक्त और त्याज्य है। ये सभी पद्य लगभग वैसे ही हैं, जैसे पुष्पदन्त के महिम्न: स्तोत्र में तीसवें पद्य के आगे के पद्य।